THE TIMES OF INDIA

Date:09-09-22

Do The Math

Learning outcomes are poor for too many children. One reform: make schools accountable to parents.

TOI Editorials

A survey of 86,000 Class 3 students from 10,000 government and private schools found 11% of students lacking basic numeracy skills and 37% with limited skills. To look at the glass half full, 42% met global minimum proficiency and had sufficient skills while 10% boasted superior skills. No doubt, many schools, especially catering to middle classes, are impressive. But the lagging 48% is India's major challenge. Collectively, it's a number over 1 crore given an estimated 2. 3 crore children in Grade 3, assuming 100% enrolment.

In languages, some good news came from English proficiency levels – 34% had superior skills, 21% sufficient skills and 45% were below par. For Hindi, corresponding figures were 25%, 22% and 53% respectively and Tamil 9%, 14% and 77%. Only Punjabi outdid English. Desire to master the English language, widely seen as a passport to better prospects, may be one explanation. And it's also a reminder to politicians who target English that children and their parents have a clear preference. Some findings seem puzzling and need further examination, including the quality of the sample. Poor performance in children's numeracy skills in rich states like Tamil Nadu and Delhi compares with above average performance in one of the poorest states, Bihar. Bihar, in fact, returned very low scores in the recent National Achievement Survey.

Nationally, the news is not hopeful. It doesn't take a math whiz to figure out that so many children lacking basic numeracy skills is real bad news for a modern economy. Think about when these children grow up – many low-skill jobs will disappear thanks to automation. Already, as evidenced by educated unemployed queuing up for jobs below their learning qualifications, India has a jobs scarcity and employability problem. Spending more money on primary education is necessary but not sufficient. The quality of teachers and teaching are problems that can only be solved by making schools accountable to their customers – parents of children who study. That means decentralisation of education administration, something not on any political agenda.

THE ECONOMIC TIMES

Date:09-09-22

Tech City Needs an Urban Rescue Plan

ET Editorials

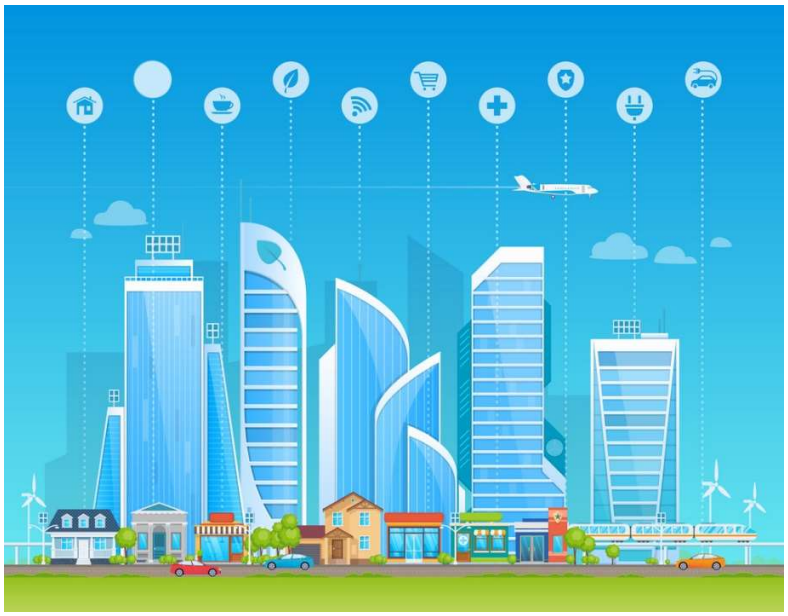

'Bangalore must be the only tech hub in the world, where software developers travel 2 hours to get to their offices that they can build apps to deliver in 10 minutes,' goes a meme that has been doing extra rounds as parts of the city experience flooding due to heavy rainfall. While the description is decidedly wiseacre-ish, it does contain an embarrassing truth. Reports of CEOs being forced to commute in tractors is no joke. While the situation may have reached a crisis point this year, urban flooding has been an issue in Bengaluru and many Indian cities. At the core of the problem is poor urban planning, poor maintenance of infrastructure and poor governance. Bengaluru 2022 must serve as a warning — of the need to equip cities, towns and habitations to live with climate change and its impacts.

The impacts of climate change — during June 1-August 31, rainfall in Bengaluru was 60% in excess of the long-period average — are exacerbated by poor urban planning. Bengaluru's growth is marked by large-scale encroachment of lakes and drains adversely impacting natural drainage systems. Increase in built-up spaces and loss in interconnectivity between water bodies affect groundwater recharging. This is compounded by the lack of a robust policy governing storm-water management due to mismatch in plans of drains by the city's two urban bodies. There is also poor waste management and debris removal affecting the capacity to drain off excess water.

Bengaluru, and other cities, are impacted by the twin problem of flooding and depletion of groundwater. Both problems will be compounded by climate change. The current situation demonstrates the failure to recognise storm water as a critical resource worthy of conservation.

दैनिक भास्कर

Date:09-09-22

राजपथ से 'कर्तव्य पथ' की यात्रा में संदेश है

संपादकीय

अंग्रेजों ने राजपथ वाले रास्ते को किंग्सवे नाम दिया, क्योंकि ब्रिटेन के राजा का प्रतिनिधि वायसराय/गवर्नर जनरल इस पर चलता था। देश को आजादी मिली। अपना संविधान बना। इसे बदलकर राजपथ नाम दिया गया। ब्रिटिश हुकूमत का सबसे बड़ा केंद्र राष्ट्रपति भवन कहलाया। इससे निकलने वाली सड़क सीधे इंडिया गेट तक जाती थी और जिसके दाएं यानी साउथ ब्लॉक (पीएम कार्यालय, रक्षा और विदेश मंत्रालय) और बाएं यानी ब्लॉक (गृह एवं वित्त मंत्रालय) है और बाएं ही ठीक 500 मीटर दूर संसद भवन स्थित है। राजपथ नाम इस बात की तस्दीक था कि राज देश के लोग कर रहे हैं। लेकिन आज 70 वर्षों बाद जब इसका नाम कर्तव्य पथ किया गया और इसे भव्यता प्रदान की गई तो भूलना न चाहिए कि लोक शाही में कर्तव्य-पथ केवल सत्ता में बैठे लोगों के लिए ही नहीं होता बल्कि जनता के लिए भी होता है। न भूलें कि संविधान के अनुच्छेद 51-ए में मौलिक कर्तव्य भी आ चुका है। इस पथ को आलीशान पिकनिक स्पॉट के रूप में विकसित किया गया है जहां फूड कोर्ट्स हैं, स्तरीय जन सुविधाएं हैं। अब स्ट्रीट वेंडरों की जगह दुकानें होंगी जहां क्वालिटी फूड मिलेगा। यहां तक तो ठीक है लेकिन यह न भूलना चाहिए कि छोटी नौकरी करने वाला इंसान भी यहां सुकून से वक्त बिता सके। नागरिकों के साथ-साथ सरकार को भी अपने कर्तव्यों का ध्यान रखना होगा।

दैनिक जागरण

Date:09-09-22

समस्याओं से जूझती विवाह संस्था

डा. ऋतु सारस्वत, (लेखिका समाजशास्त्र की प्रोफेसर हैं)

बीते दिनों केरल उच्च न्यायालय की इस टिप्पणी ने सारे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा कि 'नई पीढ़ी विवाह को बुराई के रूप में देखती है और आनंद से जीने के लिए इससे बचना चाहती है। लिव इन रिलेशनशिप का चलन बढ़ रहा है।' यह समाज के लिए चिंता का विषय है। उच्च न्यायालय ने इस चलन को वैवाहिक संबंधों के मामले में 'यूज एंड थ्रो' वाली संस्कृति की संज्ञा दी। उसने विवाह के प्रति युवा पीढ़ी के घटते मोह पर भी अपनी चिंता प्रकट की। यह चिंता स्वाभाविक भी है, क्योंकि विवाह संस्था पर ही समाज की आधार भूमि खड़ी है। अगर यह प्रभावित होगी तो स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव सामाजिक संरचना पर भी पड़ेगा। विवाह संबंधों के बिखराव पर अमूमन पश्चिमी संस्कृति को दोष देने की

मानसिकता दृष्टिगोचर होती है, परंतु क्या पश्चिमी देशों को उलाहना देने मात्र से भारत में बिखरते वैवाहिक संबंधों की समस्या से मुक्ति मिल सकती है? अगर ऐसा होता तो यह समस्या इतनी तीव्रता से भारतीय समाज को नहीं जकड़ती। इसलिए यह आवश्यक है कि हम यह जानने का प्रयास करें कि क्यों युवा पीढ़ी को विवाह रास नहीं आ रहा? वह क्यों उन्मुक्त जीवन जीना चाह रही है?

रक्तसंबंधों के अतिरिक्त वे रिश्ते जिनका चुनाव स्वयं करना होता है, उसके पीछे मुख्यतः 'आवश्यकता' का सिद्धांत कार्य करता है। विवाह सदैव भावनात्मक एवं मानसिक संबलता का पर्याय माना जाता रहा है। वैवाहिक संबंधों की सबसे बड़ी खूबसूरती अंतर्निर्भरता है, जो उसके स्थायित्व का मूलभूत तत्व भी है। दंपती अपनी दैहिक, भावनात्मक एवं भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं, परंतु दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तब उत्पन्न हुई, जब ये आवश्यकताएं वैवाहिक संबंधों की परिधि से बाहर प्राप्त होने लगीं। यहीं से विवाह की आवश्यकता को नकारा जाने लगा और विवाह उत्तरदायित्वों का अंतहीन बोझ प्रतीत होने लगा। जो युवा येन-केन प्रकारेण विवाह संबंधों में बंध भी गए, उनमें से कुछ को यह निर्णय गलत प्रतीत होता है और इसका एक बहुत बड़ा कारण स्व-श्रेष्ठता का भाव है। यह स्त्री और पुरुष दोनों में ही समान रूप से व्याप्त होता दिखता है। स्वयं की विचारधारा, मूल्यों और जीवन जीने के तरीकों को श्रेष्ठ मानते हुए अपने साथी के प्रति हीन भाव रखना या उसे अपने मनोनुकूल जीवन जीने के लिए विवश करना संघर्षपूर्ण पारिवारिक रिश्ते का आरंभ है। 'एंथ्रोपोमोर्फिज्म सिद्धांत' वैवाहिक संबंधों में बिखराव को समझने में सहायक है। यह सिद्धांत ऐसे व्यक्ति या लोगों को संदर्भित करता है, जो स्वयं के मूल्यों के आधार पर दूसरों का मूल्यांकन करते हैं। यह स्थिति आत्मकेंद्रितता की अभिव्यक्ति है और दूसरों के साथ लोगों के संबंधों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। इस संदर्भ में एमजे कामेली का शोध स्पष्ट इंगित करता है कि 'स्वार्थ का बढ़ना और दांपत्य जीवन में दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं और आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं देना परिवार के टूटने का एक बड़ा कारण है।'

विवाह संबंधों के स्थायित्व में सबसे महत्वपूर्ण घटक एक-दूसरे की भावनाओं को समझना है और इसका महत्वपूर्ण साधन सकारात्मक संप्रेषण यानी वार्तालाप है, परंतु अपनी अंतहीन भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के पीछे भागती युवा पीढ़ी उस संप्रेषण को समय की बर्बादी समझती है, जिसकी परिणति 'अविश्वास' और 'भावनात्मक अलगाव' है। एक अन्य शोध के अनुसार दंपतियों के मध्य नकारात्मक संवाद या उसका अभाव संबंध विच्छेद का एक बड़ा कारण है। दो अलग पारिवारिक पृष्ठभूमि से आए लोगों के मध्य विचारों का टकराव स्वाभाविक है, परंतु बीते दशकों में वैवाहिक समस्याओं को हल करने का तलाक के एक स्वीकृत विकल्प के रूप में उभरना समझौते के हर रास्ते को बंद कर रहा है।

युवा पीढ़ी को कठघरे में खड़ा करना सहज है, परंतु क्या कभी यह विचार करने का प्रयास किया गया कि मानव मशीनीकृत निर्माण प्रक्रिया की उत्पत्ति नहीं, अपितु हाड़-मांस के पिंड को सामाजिक प्राणी बनाने की प्रक्रिया है, जिसमें समाजीकरण की विभिन्न संस्थाओं की भागीदारी होती है। क्या ऐसे में यह जरूरी नहीं हो जाता कि समाजीकरण की इन संस्थाओं की भूमिकाओं का आकलन किया जाए? समाजीकरण की प्रथम संस्था परिवार है, जहां व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला रखी जाती है। बीते दो-तीन दशकों में सफलता की परिभाषा भौतिक सुखों की प्राप्ति तक सीमित होकर रह गई है। इसी सफलता को जीवन का अंततोगत्वा उद्देश्य मानने की सीख बाल्यकाल से ही बच्चे के भीतर रोप दी जाती है। सफलता के लिए गुरु मंत्र दिया जाता है 'साम, दाम, दंड, भेद' की नीति का पालन करना। मानवता, दयालुता और धैर्य जैसे मूल्य कमजोर हो रहे हैं। आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं भी अपनी व्यवस्थागत कार्यप्रणाली से किशोरावस्था से युवावस्था की ओर अग्रसर पीढ़ी को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से यही पाठ सिखा रही हैं। इन पर सबसे बड़ा कुठाराघात

समाजीकरण के सशक्त माध्यम 'जनसंचार साधनों' ने किया, जहां 'उन्मुक्तता' को ऐसे महिमामंडित किया गया कि उसके समक्ष नैतिकता, समर्पण, त्याग, दायित्व-बोध जैसे मूल्य पिछड़ेपन के प्रतीक बन गए हैं।

सफलता एवं आधुनिकता की छद्म परिभाषा के इर्द-गिर्द वर्तमान युवा पीढ़ी को जिन संस्थाओं ने गढ़ा है क्या वे उनसे अधिक दोषी नहीं हैं? वे आत्ममंथन करें? यदि नहीं किया गया तो अदालती टिप्पणी सत्य सिद्ध होगी, 'जब संघर्षरत जोड़े, परित्यक्त बच्चे और हताश तलाकशुदा हमारी आबादी का बड़ा हिस्सा होंगे तो यह सामाजिक जीवन की शांति पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।'

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:09-09-22

क्षमता में सुधार

संपादकीय

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने रेलवे की भूमि नीति की समीक्षा का निर्णय लिया है जो स्वागतयोग्य है। आर्थिक परिणामों को बेहतर बनाने का एक तरीका यह भी है कि उपलब्ध संसाधनों का अधिक किफायती ढंग से इस्तेमाल किया जाए। लंबे समय से यह दलील दी जा रही है कि भारतीय रेल के पास देश भर में काफी जमीन है जिसका मुद्रीकरण करके न केवल उसके लिए राजस्व जुटाया जा सकता है बल्कि समग्र आर्थिक गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। सरकार का निर्णय इस दिशा में तेजी से आगे बढ़ने का है। उदाहरण के लिए मालवहन संबंधी गतिविधियों के लिए 35 वर्षों के लिए जमीन का मालिकाना हक बाजार मूल्य के 1.5 फीसदी सालाना के हिसाब से दिया जाएगा। फिलहाल ऐसी गतिविधियों के वास्ते केवल पांच वर्ष के लिए जमीन दी जाती है और इसके लिए अधिक ऊंची दर पर शुल्क वसूल किया जाता है। सरकार को उम्मीद है कि इस नीति की मदद से अगले पांच वर्षों में 300 पीएम गति-शक्ति कार्गो टर्मिनल बनाए जा सकेंगे और इससे रोजगार के लगभग 120,000 अवसर सृजित होंगे।

सैद्धांतिक तौर पर देखा जाए तो इस संशोधित नीति के कई लाभ होंगे। रेलवे की जमीन को अगर लंबे समय के पट्टे पर दिया जाए तो इससे कार्गो टर्मिनल बनाने की इच्छा रखने वाली कंपनियों को मदद मिलेगी। लागत कम होने से अ धिक से अधिक संख्या में कंपनियों को ऐसे टर्मिनल बनाने का प्रोत्साहन मिलेगा। हालांकि अभी यह स्पष्ट नहीं है कि रेलवे इस उद्देश्य के लिए कितनी जमीन उपलब्ध कराएगा और उसे इससे कितना राजस्व हासिल होने की उम्मीद है। ऐसे में और अधिक तादाद में कार्गो टर्मिनल का निर्माण और उनका किफायती प्रबंधन उसके मालढुलाई राजस्व में बढ़ोतरी लाने में मदद करेगा। बीते दशकों में भारतीय रेल ने अपना मालढुलाई कारोबार सड़क परिवहन के हाथों गंवा दिया है। कार्गो के किफायती प्रबंधन की मदद से वह अपना खोया हुआ कारोबार कुछ हद तक वापस हासिल कर सकता है। रेलवे के माध्यम से मालढुलाई पर्यावरण की दृष्टि से भी बेहतर होती है।

इसके अलावा बेहतर दृश्यता और कम लागत के कारण सरकार को कंटेनर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (कॉनकॉर) की नीतिगत बिक्री में भी मदद मिल सकती है। सरकार ने नवंबर 2019 में कॉनकॉर के निजीकरण को मंजूरी दी थी लेकिन यह काम पूरा नहीं हो सका। कॉनकॉर जिन 61 कंटेनर डिपो का संचालन करता है उनमें से 26 रेलवे की जमीन पर बने हैं। चूंकि सरकार ने मौजूदा परिचालकों को कुछ शर्तों के साथ नए संदर्भों पर स्थानांतरित होने की इजाजत दे दी है इसलिए कॉनकॉर को काफी अधिक लाभ होगा। फिलहाल वह बाजार मूल्य का 6 फीसदी भुगतान कर रहा है और चालू वित्त वर्ष में करीब 300 से 400 करोड़ रुपये के आवंटन की उम्मीद है। अब जबकि यह क्षेत्र अधिक चर्चा में रहेगा तो कंपनी का आकर्षण बढ़ जाएगा और नए मालिक भी परिचालन का विस्तार करने की दृष्टि से बेहतर स्थिति में होंगे।

कार्गो कारोबार के अलावा सरकार ने रेलवे की जमीन पर कई अन्य गतिविधियों के लिए भी मानक शिथिल किए हैं। प्रतिवर्ष 1.5 फीसदी बाजार मूल्य पर इसका इस्तेमाल बिजली, जल आपूर्ति, गैस और शहरी परिवहन से जुड़े कामों के लिए किया जा सकता है। यह नीति सामाजिक बुनियादी ढांचे के विकास की दृष्टि से भी खुली हुई है। उदाहरण के लिए निजी-सार्वजनिक भागीदारी में अस्पताल का निर्माण और केंद्रीय विद्यालय संगठन के स्कूल आदि। इसके अलावा रेलवे की जमीन का इस्तेमाल नाम मात्र की लागत पर सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित करने के लिए भी किया जा सकता है। सरकार का लक्ष्य एक व्यापक नीतिगत दस्तावेज तैयार करने और प्रस्तावों को 90 दिन के भीतर क्रियान्वित करने का है। इस संदर्भ में सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि नीति का क्रियान्वयन पारदर्शी तरीके से हो। जमीन के मूल्यांकन से सावधानीपूर्वक निपटना होगा क्योंकि इस नीति को एक साथ कई स्थानों पर सरकारी और निजी संस्थाओं से निपटना होगा और वह भी बहुत बड़ी संख्या में। यदि नीति का सफल क्रियान्वयन हुआ तो न केवल रेलवे के लिए संभावनाएं सुधरेंगी बल्कि किफायत भी बढ़ेगी और देश में समग्र गतिविधियों में भी सुधार होगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:09-09-22

विकास नीति की भेंट चढ़ते पहाड़ी राज्य

सुरेश भाई

हिमालय बचाओ! केवल नारा नहीं है। यह हिमालय क्षेत्र में भावी विकास नीतियों को दिशाहीन होने से बचाने का एक रास्ता बता रहा है। क्योंकि पहाड़ की महिलाओं ने चिपको आंदोलन के दौरान कहा है कि 'मिट्टी, पानी और बयार! जिंदा रहने के आधार!' और आगे चलकर रक्षासूत्र आंदोलन का नारा है कि 'ऊंचाई पर पेड़ रहेंगे! नदी ग्लेशियर टिके रहेंगे!' आदि के निर्देशन हिमालय के लोगों ने देशवासियों को दिए हैं। अभी अलकनंदा के सिरहाने पर बसे हेलंग गांव की महिलाओं को उन्हीं के चारागाह मे घास नहीं काटने दिया गया है, जिसके विरुद्ध उत्तराखंड में लोग जगह-जगह सड़कों पर उतरे हुए हैं।

विख्यात पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा कहते थे कि 'धार ऐंच पाणी, ढाल पर डाला, बिजली बणावा खालाखाला!' इसका अर्थ यह है कि चोटी पर पानी पहुंचना चाहिए, ढालदार पहाड़ियों पर चौड़ी पत्ती के वृक्ष लगे और इन पहाड़ियों के बीच से आ रहे नदी, नालों के पानी से घराट और नहरें बनाकर बिजली एवं सिंचाई की व्यवस्था की जाए। इसको ध्यान में रखते हुए हिमालय नीति के लिए केंद्र सरकार पर दबाव बनाया जा रहा है। हिमालय की पानी, मिट्टी देश के काम आ रही है। यहां अभी शुद्ध ऑक्सीजन का भंडार बचा है। हिमालय जलवायु को नियंत्रित कर रहा है, यहां से निकलने वाले गाड़-गदेरे, नदियां और ग्लेशियरों को भी हिमालय ने जीवित रखा है, लेकिन मौजूदा समय में हिमालय में चल रहे उपभोक्तावादी, शोषणयुक्त, अविवेकपूर्ण अस्थाई विकास कभी भी स्थायित्व ग्रहण नहीं कर सकता है। इसलिए देश के योजनाकारों, राजनेताओं, वैज्ञानिकों को अब यह समझना चाहिए कि हिमालयी समाज, संस्कृति, पर्यावरण के साथ देश की सुरक्षा के लिए तत्पर हिमालय को विकास के नाम पर मैदानों के भौगोलिक आकार-प्रकार के अनुसार नहीं मापा जा सकता है। यह अवश्य है कि संसद में इस पर चर्चा हो चुकी है। हिमालय के लिए अलग मंत्रालय बनाने की वकालत की गई है, लेकिन अब तक न तो मंत्रालय बना और न ही हिमालय नीति पर कोई विचार किया गया है। हिमालय और इसके निचले क्षेत्रों पर तेजी से बढ़ रहे जलवायु परिवर्तन के कारण भी संकट बढ़ेगा, इसके अलावा सुरंग बांधों के श्रृंखलाबद्ध निर्माण से हिमालयी नदियां सूखकर मटियामेट होने की आशंकाओं से इनकार नहीं किया जा सकता है। इसके परिणाम होंगे कि हिमालयी राज्यों से विस्थापन एवं पलायन की समस्या बढ़ेगी। अधिकांश हिमालयी राज्यों की स्थिति यह है कि यहां के निवासी जल, जमीन और सघन वनों के बीच रहकर भी उनका इन पर अधिकार नहीं हैं। प्रत्येक वर्ष लगभग 12 लाख मिलियन क्यूबिक मीटर पानी हिमालय की नदियों से बहता है, जो पूरे देश में 40 प्रतिशत जलापूर्ति करता है, जिसमें असंख्य जलचर प्राणियों का एक संसार निवास कर रहा है, जिसके लिए लगातार जल प्रवाह को बनाए रखने की आवश्यकता है। इसलिए वैज्ञानिकों के अनुसार मांग की जाती है कि हिमालयी राज्यों में नदियों का जल बहाव निरंतर एवं अविरल रखना अनिवार्य है। हिमालय का वन क्षेत्र स्वस्थ पर्यावरण के मानकों से अभी बचा हुआ है, इसके लिए जैव विविधता का संरक्षण व संवर्द्धन स्थानीय लोगों के साथ मिलकर करने की आवश्यकता है। हिमालयी क्षेत्रों में होने वाली कुल वर्षा का 5 प्रतिशत भी उपयोग में नहीं आता है। हिमालय में चल रहे विनाशकारी बड़े निर्माण कार्य जैसे चौड़ी सड़क, बांध, पंचतारा संस्कृति, वनों का व्यावसायिक दोहन आदि के कारण प्राकृतिक संसाधनों का बेहिसाब दोहन हो रहा है। बाढ़, भूकंप, सूखा, वनाग्नि जैसी घटनाओं की पिछले 35 वर्षों से लगातार पुनरावृत्ति हो रही है, जिससे यहां के छोटे किसान प्रभावित हो रहे हैं।

यह स्थिति केवल हिमालय क्षेत्र में ही नहीं बल्कि देशभर में इसके प्रभाव क्षेत्र में रह रहे लोगों के जीवन एवं जीविका संकट में पड़ गई है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006 कहती है कि पर्वतों के संरक्षण के लिए समुचित भूमि उपयोग, संवेदनशील क्षेत्रों को बचाने के लिए बुनियादी निर्माण, किसानों को उनके उत्पादों का लाभ दिलाना, पर्यटन से स्थानीय लोगों की आजीविका चलनी चाहिए, पर्यटकों की संख्या के आधार पर पर्यटक स्थलों की क्षमता को देखकर ही प्राथमिकता होनी चाहिए। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन पर एनएपीसीसी में राष्ट्रीय हिमालय इको सिस्टम के अंतर्गत हिमालयी ग्लेशियरों पर उत्पन्न संकट का समाधान करने के लिए समुदाय आधारित वनभूमि संरक्षण के प्रबंधन पर राज-समाज को मिलकर कार्ययोजना बनाने की आवश्यकता है। हिमालय आध्यत्मिक प्रेरणा का स्रोत है। इसके अंग-प्रत्यंग (नदी, ग्लेशियर, जंगल, जमीन) बिकाऊ नहीं टिकाऊ बनाए रखने में हमारी भूमिका होनी चाहिए। केंद्र सरकार को हिमालय नीति बनाने के लिए कदम बढ़ाने चाहिए, जिसमें जलवायु एक्शन प्लान, ग्रीन कंस्ट्रक्शन, ईको सर्विस, वनाधिकार, आपदाओं का प्रबंधन, सूक्ष्म एवं लघु जल विद्युत परियोजनाओं का विस्तार, जल संरक्षण एवं कृषि क्षेत्र का बचाव कर किसानों की आजीविका बचाने के उपाय मजबूत करने पड़ेंगे।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:09-09-22

सियासी चंदे का खेल

संपादकीय

राजनीति और चुनाव के नाम पर जो अंधेरगर्दी रही है, उस पर से आयकर विभाग ने परदा कुछ हटा दिया है। राजनीतिक दलों की आड़ में बहुत कुछ ऐसा होता आया है, जिस पर चुनाव आयोग या सरकार की निगाह नहीं थी। आयकर विभाग ने दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, हरियाणा और कर्नाटक में करीब 205 ठिकानों पर छापे मारे हैं और अनेक कथित राजनीतिक दलों का भंडाफोड़ किया है। यह शर्मनाक बात है कि झुग्गियों, गुमटियों से भी राजनीतिक दल चल रहे हैं और करोड़ों रुपये के वारे-न्यारे कर रहे हैं। आयकर अधिकारियों ने उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर में एक ऐसी पंजीकृत, पर गैर-मान्यता प्राप्त पार्टी का पता लगाया, जो घड़ी मरम्मत करने की दुकान से संचालित होती थी और जिसने पिछले तीन वर्षों में चंदे के रूप में 370 करोड़ रुपये स्वीकार किए थे। जाहिर है, आयकर विभाग के लिए उस व्यक्ति का पता लगाना जरूरी हो गया, जो एक राजनीतिक पार्टी के नाम पर अरबों रुपये के वारे-न्यारे कर रहा है। घड़ी दुकान के मालिक के अलावा ऐसे राजनीतिक दल के मालिक की धर-पकड़ भी जरूरी है, जिसके लिए राजनीति या पार्टी एक कारोबार मात्र है। ऐसी पार्टियां न जाने कब से काला कारोबार चला रही हैं?

वास्तव में, यह गंभीर अपराध है कि ऐसे अनेक कथित राजनीतिक दल काले धन के शोधन या आयकर बचाने के कारोबार में लगे हैं। पता यह चल रहा है कि ऐसे दलों को धन शोधन के एवज में तीन से पांच प्रतिशत कमीशन मिलता है। मतलब, जिस कथित पार्टी प्रमुख ने 300 करोड़ रुपये को चंदा स्वरूप लेकर काले से सफेद बनाया है, उसे नौ करोड़ रुपये का फायदा हुआ होगा। यदि कोई एक राजनीतिक पार्टी का पंजीकरण भर करा ले, चुनाव भी न लड़े, तब भी करोड़पति बन सकता है? फिर सवाल उठता है कि ऐसी गैर-मान्यता प्राप्त पंजीकृत पार्टियों से किसको लाभ है? ऐसी पार्टियां न तो जमीनी संघर्ष कर रही हैं और न ही नैतिकता का पालन। इनका एक ही काम है, समाज में भ्रष्टाचार को संस्थागत रूप से मजबूत करना। मुंबई की एक झुग्गी से ऐसी पार्टी चल रही है, जिसे दो साल में 100 करोड़ रुपये चंदे में मिले हैं, मतलब इस पार्टी का मुखिया दो साल में तीन करोड़ रुपये कमा गया। यह गलत परिपाटी या आर्थिक भ्रष्टाचार उन लोगों के साथ अन्याय है, जो वास्तव में बहुत संघर्ष करके दो जून की रोटी जुटाते हैं। राजनीतिक दलों के पंजीकरण को इसलिए उदार नहीं बनाया गया था कि कोई पार्टी अपना धंधा चमकाने लगे।

वास्तव में, राजनीतिक पार्टियों को जब कोई चंदा देता है, तो उतनी राशि पर उसे आयकर में छूट का लाभ भी मिलता है। काफी सारा पैसा राजनीतिक दलों के पास ऐसा आता है, जिसके स्रोत का खुलासा नहीं करना पड़ता है। दान या चंदे

को राजनीतिक दल आसानी से छिपा सकते हैं, क्योंकि उनकी नकेल कसने का कोई विशेष इंतजाम नहीं है। जब भी चंदे को आधिकारिक या पूरी तरह से घोषित या पारदर्शी बनाने की चर्चा होती है, तब बडे राजनीतिक दल आगे बढ़कर अपनी अबाध आर्थिक आजादी सुनिश्चित करते हैं। आयकर विभाग ने इस सिलसिले में छापे मारकर साहसिक काम किया है। यह प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए। बड़े दलों के खातों की भी पड़ताल होनी चाहिए। यह न्यायोचित नहीं कि महज छोटे दलों को ही निशाना बनाया जाए। चुनाव आयोग को भी सक्रिय होना चाहिए, जब 55 पार्टियां ही मान्यता प्राप्त हैं, तो 2,000 से ज्यादा अन्य पंजीकृत पार्टियां किस काम में लगी हैं?

Date:09-09-22

हिमालय को प्यार से सहेजना सारे जहां के लिए जरूरी

गिरीश चंद्र गुरुरानी, (स्थानीय संपादक, उत्तराखंड)

साल 2012 में सितंबर की पहली सुबह संकल्प के साथ हिन्दुस्तान की टीम देहरादून दफ्तर से निकली। कुछ हाथों में बैनर थे और कुछ हिमालय प्रतिज्ञा के पर्चे पकड़कर चल पड़े। किसी संवाददाता की मंजिल स्कूल था, कोई व्यापार मंडल, बार एसोसिएशन, नगर निगम, कर्मचारी संगठन, शिक्षक संगठन, धार्मिक-सामाजिक संगठन, कॉलेज या फिर यूनिवर्सिटी जा पहुंचा। ऐसा सिर्फ देहरादून में ही नहीं हुआ था, बल्कि समूचे प्रदेश में हिन्दुस्तान की टीम हर शहर और कस्बे में एक साथ उतरी। पूरा उत्तराखंड हिमालय प्रतिज्ञा से गूंज उठा। अगले नौ दिन तक हिन्दुस्तान हिमालय बचाओ अभियान राज्य के कोने-कोने तक फैल चुका था। सरकारी विभागों, नागरिक संस्थाओं के अलावा सेना की गढ़वाल रायफल्स व कुमाऊं रेजिमेंट ने भी हिमालय संरक्षण की शपथ ली। बुद्धिजीवियों और पर्यावरण कार्यकर्ताओं से मिली सराहना की शक्ति से यह अभियान 10 वर्ष पूरे कर चुका है। इस अभियान के अंतर्गत आज 11वां हिमालय दिवस मनाया जा रहा है। यह अभियान सिर्फ उत्तराखंड या हिमालयी राज्यों की जरूरत नहीं है, बल्कि एशिया के कई देशों का जीवन हिमालय से प्रभावित होता है। इसके पर्यावरण प्रभावों का उत्तर व पूर्वी भारत के 20 राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों पर असर पड़ता है।

हिमालय नई और संवेदनशील पर्वत शृंखला है। टेथिस सागर से उपजे पर्वतराज की पूर्णता अभी बाकी है। अध्येता मानते हैं कि इसकी ऊंचाई अभी तक बढ़ रही है। मानवीय हमलों के कारण उसका पर्यावरण निरंतर बिगड़ रहा है। हिमालय के साढे नौ हजार से अधिक छोटे-बड़े ग्लेशियरों में से ज्यादातर प्रतिवर्ष दो से लेकर 51 मीटर तक पिघलकर पीछे खिसक रहे हैं। शिमला में पांच फीट बर्फ गिरने की बातें अब कहानियां बनकर रह गई हैं। हमने चार दशक पहले पहाड़ों पर होली के दिन महज सात सौ मीटर की ऊंचाई पर बर्फ को जमीन छूते देखा है। नीति आयोग की रिपोर्ट में भी हिमालय की चिंताजनक तस्वीर का उल्लेख हो चुका। आधे से ज्यादा जल-स्रोतों के सूखने के सुबूत मिल चुके हैं। जल का अपार भंडार समेटे हिमालय के ज्यादातर लोग प्यास बुझाने को अब अपने गांव के स्रोतों पर निर्भर नहीं रहे। उन्हें कहीं दूर से पाइप लाइन बिछाकर जलापूर्ति की जा रही है। हिमालय के जलस्रोतों को बचाया जा सके, तो सरकारों को अरबों रुपये की योजनाएं नहीं बनानी पड़ेंगी और लोगों को वाटर स्प्रिंग के रूप में सीधे धरती की गोद से निकल रहा साफ पानी पीने को

मिलेगा। इसके लिए अध्ययन करना होगा कि भू-जल के असीमित दोहन का इस पर कितना असर है और हमारी जल नीति कैसी हो?

कोरोना काल में साधारण व्यक्ति को भी ऑक्सीजन का महत्व समझ में आ चुका, इसीलिए हिमालय के जंगलों को बचाया जाना बेहद जरूरी है। घने जंगलों से घिरा हिमालय क्षेत्र एशिया महाद्वीप का ऑक्सीजन बैंक भी है। इन्हीं चिंताओं के चलते पर्यावरण कार्यकर्ताओं और हिमालय प्रेमियों ने 2010 में 9 सितंबर को हिमालय दिवस मनाने फैसला लिया था। हिन्दुस्तान ने इस मुद्दे पर व्यापक जन जागरूकता की आवश्यकता को देखते हुए बड़े स्तर पर अभियान आरंभ किया। हिमालय बचाओ मुहिम धीरे-धीरे धरातल पर नजर आने लगी है। कई स्कूलों में केवल हिमालय दिवस पर ही नहीं, बल्कि पूरे साल बच्चे हिमालय प्रतिज्ञा ले रहे हैं। जलस्रोतों को रीचार्ज करने के लिए लोग आगे आ रहे हैं। कई लोग प्लास्टिक के खिलाफ जागरूकता का काम कर रहे हैं। हरिद्वार में गंगा-तटों की सफाई हो या पिथौरागढ़ में ऑल वेदर रोड के किनारे पौधारोपण, लोग खुद योजना बनाकर उसे लागू करने में अपना समय व श्रम हिमालय के लिए दान कर रहे हैं। यह व्यापक विषय है, सफर लंबा है।

यह सच है कि विकास को पूर्णत: रोका नहीं जा सकता, लेकिन पर्यावरण के साथ संतुलन तो बनाया जा सकता है। हिमालय पर बढ़ता प्लास्टिक का बोझ नहीं रोक पाए, तो नदी, पहाड़, ग्लेशियर, सबका नुकसान होगा। भूस्खलन के लिहाज से संवेदनशील स्थानों और रीवर बेड पर बसावट क्या रोकी नहीं जा सकती? विशेषज्ञों की मदद लेने में संकोच कैसा? प्रकृति को समझे बिना मनमाने दोहन के कारण हमें एक अरसे बाद बदले में कई गुना भरपाई करनी पड़ती है। पहाड़ों पर प्राकृतिक आपदाओं का अलार्म सुन रहे हैं न आप?